

•

•

•

अद्वाणं जो महंतं तु,
 सपाहेजो पवज्जइ ।
 गच्छंतो सो सुही होइ,
 छुहातएहाविवज्जिओ ॥ (५)
 एवं धम्मं पि काऊणं,
 जो गच्छइ परं भवं ।
 गच्छंतो सो सुही होइ,
 अप्पकम्मे अवेयणे ॥ (६)

-उत्त० १९-२१-२

वियाणिया दुक्खविवद्दणं धणं,
 ममत्तबंधं च महाभयावहं ।
 सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं,
 धारेज्ज णिव्वाणगुणावहं महं ॥ (६)

-उत्त० १६-६

तदा मायतिष्ठो नाम्,

ममं दिव्या मदीयं ।

विममं मममोऽममो,

अकमे भग्ममि मोयः ॥ (१०)

एवं धम्मं विउक्कम्म,

अहम्मं पट्ठिवज्जिजया ।

बाले मच्चुमुहं पत्तं,

अकमे भग्मे व सोयइ ॥ (११)

-उत्त० ५-१४-१

तदा य तिरिण वागिया, मूलं वेत्तुण गिग्गया

एगोऽत्थ लहए लाहं, एगो मूलेण आगयो (१२)

एगो मूलं पि हारित्ता, आगयो तत्थ वागिओ

ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह । (१३)

-उत्त० ८-१४-१५

लब्धंति विमला भोग,

लब्धंति मृगमयमा ।

लब्धंति पुनर्मितं न,

एषो धर्मो न लब्धः ॥ (१६)

एष धर्मो भूय मिदं,

सामण त्रिणदंमिण ।

सिद्धा मिज्झंति चाणंणं,

मिज्झस्मंति तशउवरं ॥ (१७)

-उत्त० १६-१.

अंताणि धीरा सेवन्ति,

तेण अंतऋरा इह ।

इह माणुस्सण् ठाण्णे,

धम्ममाराहिउं नरा ॥ (१८)

-सूय. १५-१०

३ ॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

॥ १०० ॥ १०० ॥ १०० ॥

अष्टिमा

मन्त्रे त्रीना नि हृच्छन्ति,
 जीविषं न मर्मिज्जतु ।
 तस्मा पाणिनहं घोरं,
 निग्मंथा वदन्त्येति मां ॥ (१)
 -युग १-११

अभयो पत्थिवा ! तुज्झं,
 अभयदाया भवाहि य ।
 अस्मिच्चे जीवलोगम्मि,
 किं हिंसाए पसज्जसि ? ॥ (२)
 उत्तरा २ १८-११

सो चेदं अम्मापियसं,

एवमेवं जहा कुटं ।

इह लोके गिण्णिवामस्स,

णत्थि किंचिवि दुक्करं ।

—३—

अणिसिओ इहं लोए,

परलोए अणिसिओ

घासीचंदणक्खो अ,

असणे अणसणे . ६ .

(5)

[illegible]

25

विद्यमान् विदुः सर्वे नान्यत्र भवन्ति ।
ननु तदा कदा, अथवा किम् ? आदि न भवेत्
अतएव न भवति । अतएव न भवति ।
विद्यमानं न भवति ।

(E)

अनुमान के द्वारा मैं मनुष्य मर्त्य तथा प्राणि-
जन्तुनर सभी का व्यवहार करके, अनुमान ज्ञान—
वैधव्यापार में मुझ एवं मनुष्यों द्वारा सभी प्रकार
इष्टानुमान होता है जैसे व्यापार में मूल्य ।

(१०)

संयमी पुरुष पट्जोवनिकास का आरंभ न करते हुए, मृषावाद एवं अदत्तादान का सेवन न करते हुए, परिग्रह, नारी, मान और माया का त्याग करते हुए विचरण करते हैं ।

(११)

हाथ पैर आदि शरीर के अवयवों को, मन को पाँचों इन्द्रियों को, पाप-परिणाम को और भाषा संबंधी दोषों को गोपन करना चाहिए; अर्थात् इन सब की दुष्प्रवृत्ति से वचना चाहिए ।

(१२)

जैसे कछुवा अपने अंगों को अपने शरीर में संकुचित कर लेता है, उसी प्रकार मेधावी पुरुष धर्मध्यान की भावना से पापों को संकुचित कर ले ।

ओमाणमिच्छे मणुए समार्हि,

अणासिए शंतकरिंति श्चचा ।

ओमासमाणे दवियस्स वित्तं,

ए शिक्कसे वहिया आसुपन्नो ॥ २१

—सूय. १-१४-

सदाणि सोच्चा अदु भेरवाणि,

अणामवे तेषु परिष्पणज्जा ।

निदं च भिक्खु न पमाय कुज्जा,

कदकदं वा वित्तिगिच्छतिन्ने ॥ २२

—सूय. १-१४-

विउद्धितेणं समयाणुसिद्धे,

उहंण त्रुड्ढेण उ चोइओ य ।

अच्चुद्धियाए घडदासिए वा,

अगारिणं वा समयाणुसिद्धे ॥ २४

-सूय. १-१४-८

ण तेसु कुज्जे ण य पव्वहेज्जा,

ण यावि किंची फरुसं वएज्जा ।

तहा फरिस्संति पडिसुणेज्जा,

सेयं खु मेयं ण पमाय कुज्जा ॥ २५

—सूय १-१४-९

(२४)

शास्त्र से विरुद्ध कार्य करने वाला गृहस्थ या अन्य तीर्थिक या उम्र में बड़ा अथवा छोटा, यहां तक कि घटदासी भी यदि साधु को शुभ आचरण की शिक्षा दे तो भी साधु को क्रोध नहीं करना चाहिए ।

(२५)

पूर्वोक्त प्रकार से शिक्षा दिया हुआ साधु शिक्षा देने वाले पर क्रोध न करे, उसे व्यथा न पहुँचावे, कटु वचन न कहे । 'अब मैं ऐसा ही करूँगा' इस प्रकार स्वीकार करता हुआ साधु प्रमाद न करे ।

मे सुदुर्गुणं उवहाणवं च,
घम्यं च जे निंदति तत्थ तत्थ ।

आदेज्जवक्कं कुमले विद्धं,
म अरिहद्द भागिउं तं समाहिं ॥ २१
—मूय १-१४-

जहा दूस्समम पुप्फेसु,
भमरां आवियइ रस ।
ण य पुप्फं किलामेइ,
सो अ पीणेइ अप्पयं ॥ (

एमेए समणा मुत्ता,
जे लोए संति साहुणो ।
विहंगमा व पुप्फेसु,
दाणभत्तेसणे रया ॥ (२

—दस. १-

वत्थगंधमलंकारं,

इत्थीओ सयगाणि य ।

अच्छंदा जे न भुंजति,

न से चाइ त्ति वुच्चइ ॥ (१)
—दस.

जे य कंते पिए भोए,

लद्धे वि पिट्टिकुव्वइ ।

साहीणे चयई भोए,

से हु चाइ त्ति वुच्चइ ॥ (२)
—दस.

सुहसायगस्स समणस्स,

सायाउलगस्स णिगामसाइस्स ।

उच्छोलणापहीयस्स,

दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥ (३)
—दस.

(२६)

जो विवश होकर—अनिच्छा से वस्त्र, गंध, नंकार स्त्री और शय्या आदि का उपभोग नहीं करता, वह त्यागी नहीं कहलाता ।

(३०)

जो कमनीय और प्रिय भोगों को प्राप्त होने पर भी स्वेच्छापूर्वक त्याग देता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है ।

(३१)

सुख का आस्वादन करने वाले, साता के लिए आकुल रहने वाले, अत्यधिक निद्रा लेने वाले, बार-बार अंगों को पखारने वाले, ऐसे श्रमण को सद्गति प्राप्त होना दुर्लभ है ।

(३०)

जो तपश्चरण एवं मद्गुणों का प्रधानतः
वाला है, अरुत वृद्धि वाला है, क्षमा और संयम में
निरत है और परीषद्ओं पर विजयी होता है, उस
साधु को मुक्ति मुद्रा होती है ।

(३१)

जिन्हें तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है
वे भले ही विलम्ब करके—वृद्धावस्था में भी शीघ्र
हुए हों, शीघ्र देवभवनों-स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ।

(३२)

भिक्षु साज-शृंगार-भावना के निमित्त से
चिकने कर्मों का बन्ध करता है; जिससे वह पार
और दुस्तर संसार-सागर में जा पड़ता है ।

(३५)

श्रमण बहुत निद्रा न ले, ठहका मार-मार कर न हसे, परस्पर विवाधा न करे; बल्कि सदैव स्वाध्याय में निरत रहे ।

(३६)

साधु के योग्य सदगुणों के कारण ही कोई साधु होता है और अवगुणों के कारण असाधु कहलाता है; अतः साधु के योग्य गुणों को ग्रहण करो और साधु के अवगुणों का त्याग करो । जो आत्मा के द्वारा आत्मा के स्वरूप को जानकर राग और द्वेष को त्याग कर समभाव धारण करता है वही पूज्य है ।

अद्विभागी गगनं,

अद्वं लुदं अणिग्गहे ।

अमविभागी अनिगतं,

पावमपणं ति वृत्तवई ॥ (३७)

—उत्तः १७-१

पुड्डो य दंसमसएहिं,

समरं व महामुणी ।

णागो सगामसीसे वा,

अभिहणे परं ॥ (३८)

—उत्त० २-१

(३४)

जो अत्यन्त मायावी, मूंगर (बकपादी), अभियानी, सोशी, इन्द्रियों का निग्रह न करने वाला, गुरु, स्नान या जैत्र आदि को उचित अर्जन आदि न देने वाला एवं गुरु आदि के प्रति प्रीतिमान् नहीं होता, वह पाप-श्रमण कहा जाता है ।

(३८)

जैसे शूरवीर हस्ती संग्राम के अग्रभाग में तीरों से वीधा जाता हुआ भी बिना घबराये शत्रु पर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार शत्रु, मच्छरों आदि से रपृष्ट होकर मुनि भी क्रोधादि भावनाओं पर विजय प्राप्त करे ।



(८)

जैसे अन्धकार का विध्वंस करने वाला उदीयमान सूर्य तेज से जाज्वल्यमान होता है, इसी प्रकार बहुश्रुत भी अज्ञानान्धकार का विनाशक, संयम से ऊँचा उठता हुआ एवं तपन्तेज से देदीप्यमान होता है ।

(९)

जैसे नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा नक्षत्रों, ग्रहों एवं ताराओं से घिरा हुआ पूर्णिमासी को समस्त कलाओं से परिपूर्ण होता है; इसी प्रकार बहुश्रुत भी साधु समूह रूपी नक्षत्रों से परिवृत होता है ।

(१०)

जैसे सागर में समाने वाली, नीलवन्त पर्वत से निकलने वाली शीता नामक नदी नदियों में उत्तम है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अन्य साधुओं में उत्तम, समुद्र के समान मुक्तिगामी और नीलवन्त पर्वत के समान महान् कुल में प्रसूत होता है ।

तप

(१)

जैसे पल्लस्तर वाली दीवार पल्लस्तर गिरा कर कुंश कर दी जाती है, इसी तरह अनशन आदि तपों द्वारा शरीर को कुंश कर देना चाहिए और अहिंसाधर्म का पालन करना चाहिए । सर्वज्ञ ने यही धर्म कहा है ।

(२)

जैसे पक्षिणी अपने शरीर में लगी धूल को गरीर झाड़ कर गिरा देती है, इसी तरह अनशन-नादि तप करने वाला तपस्वी अव्य अपने कर्मों का नाश कर देता है ।

अप्या चेव दमेयव्वी,
 अप्या हु खलु दुद्दमो ।
 अप्या दंतो सुही होइ,
 अस्सि लोए परत्थ य ॥५॥

—उत्तः

जो सहस्सं सहस्साणं,
 संगामे दुज्जए जिणे ।
 एगं जिणिज्ज अप्पाणं,
 एम से परमो जओ ॥६॥

—उत्त० ६-२४

अप्पाणमेव जुज्झाहि,
 किं ते जुज्झेण वज्झओ ।
 अप्पणा चेव अप्पाणं,
 जइत्ता सुहमेहए ॥७॥

—उत्त० ७-५

(१५२)

चिन्तन के चित्र

कामभोग

सल्लं कामा विसं कामा,
कामा आसीविमोवमा ।

कामे पत्थेमाणा,
अकामा जंति दुग्गई ॥१॥
—उत्तरा० ६-५३

सव्वं विलवियं गीयं,
सव्वं णट्ठं विडम्बणा ।

सव्वे आभरणा भारा,
सव्वे कामा दुहावहा ॥२॥
—उत्तरा० १३-५५

कामभोग

(१)

काम मन्य के समान है, काम विर के समान
। काम विषधर नाग के समान है । काम का
वेदन न करते हुए भी काम की दृष्टि मात्र करने
वाले भी दुर्गति को प्राप्त होते हैं ।

(२)

मंसार में समस्त गीत विज्ञाप मात्र है, समस्त
नृत्य विडम्बना है, समस्त आभरण भार रूप है
और समस्त काम दुःखजनक है ।

(१३)

मनुष्यों के यह कामभोग कुशाग्र के जल के
मान अल्प है और वे भी छोटी-सी जिंदगी में !
फिर मनुष्य क्यों अपने योग धर्म को नहीं समझता !

(१४)

भोग-आमिष रूप दोष में आसक्त तथा हित-
कारी मोक्ष के विषय में विपरीत बुद्धि वाला,
अज्ञानी एवं धर्मक्रिया में शिथिल मूढ़ पुरुष उसी
प्रकार कर्मों से बद्ध होता है जैसे इलेप्स में भक्ती ।

(१५)

इन कामभोगों का त्याग करना बहुत कठिन
है । अधीर पुरुष सरलता से इनका त्याग नहीं कर
सकते । मगर जैसे वणिक् नौका के द्वारा दुस्तर
सागर को पार करते हैं उसी प्रकार निष्कलंक व्रत
धाले सन्त जन भव-सागर को पार करते हैं ।

मे ह नकम् मणुस्साणं,

जे कंखाए य अंतए ।

अंतएण सुरो वहती,

चक्कं अंतएण लोड्ढती ॥ (१८)

—सूय. १५-०१

जमाहु अंहं सलिलं अपारगं,

जाणाहिं णं भवगहणं दुमोक्खं ।

जंसी विसन्ना विसयंगणाहिं,

दुहओ वि लोयं अणुसंचरंति ॥ (१९)

—मग १०-१५

मज्जं विगयकसाया,

निदा विगहा य पंचमी भणिया ।

एए पंच पमाया,

जीवं पाडेंति संसारे ॥ (३)

कोहो अ माणो अ अणिग्गहीआ,

माया अ लोभो य पवड्ढमाणा ।

चत्तारि एए कसिणा कसाया,

सिंचंति मूलाहं पुणवभवस्स ॥ (१)

—दस. ८-४।

क 'माणं च मायं च,

लोहं च पाववड्ढणं ।

वमे चत्तारि दोसाहं,

इच्छंतो हियमप्पणो ॥ (२)

—दस. ८-३७

(१)

मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और पांचवीं
विश्या, यह पांच प्रमाद जीव को संसार में-जन्म-
मरण के चक्र में डालते हैं ।

कषाय

(१)

निबन्धित नहीं किया हुआ क्रोध और मान
तथा बढ़ती हुई माया और लोभ-यह सब चारों
कषाय पुनर्भव के मूल का मिचन करते हैं अर्थात्
जन्म-मरण की परम्परा को वृद्धि करते हैं ।

(२)

जो अपना हित चाहता है वह क्रोध, मान,
माया और पापों को बढ़ाने वाले लोभ को-इन
—को-को-को त्याग दे ।

कोहो पीड़ं पणःसेइ,

माणो विणयणासणो ।

माया भित्ताणि नासेइ,

लोहो सव्व विणासणो ॥ (३)

—दत्त० ८-३८

उवसमेण हणे कोहं,

माणं मद्वया जिणे ।

मायमज्जवभावेणं,

लोहं संतोसओ जिणे ॥ (४)

—उत्त० ८-३९

अहे वयइ कोहेण,

माणेण अठमा गई ।

माया गइपडिग्घाओ,

लोहाओ दुहओ भयं ॥ (५)

—उत्त० ८-४०

कायसा वयसा मत्ते,
वित्ते गिद्धे य' इत्थिसु ।

दुहओ मलं संचिणइ,
सिसुनागो व्व मट्टियं ॥ (६)
—उत्त० ५-१०

सण्हि च न कुव्विजा,
लेवमायाय संजए ।

पक्खी पत्तं समायाय,
णिरवेक्खो परिव्वए ॥ (७)
—उत्त० ६-१६

कसिणं पि जो इमं लोकं,
पडिपुण्णं दलेज्ज एगस्स ।

तेणावि ते ण संतुस्से,
इह दुप्परए इमे आया ॥ (८)
—उत्त० ८-१६

(१४)

जो मनुष्य फरावों में युक्त है, वह चाहे नग्न एवं कृम होकर विचरण करे अथवा एक मान के भूत में भोगन करे; तथापि धनन्त काल तक परमवान-ब्रह्म-मरण को प्राप्त होता है ।

(१५)

जो पुरुष नग वा चोर, भ्रूत वा वचन का चोर, दण्ड का चोर वा आचार-भाव का चोर होता है, वह मर कर किल्बिष (अश्रम श्रेणी का) देव होता है ।

(१६)

देवगति प्राप्त होने पर भी किल्बिष होता है !
यहाँ भी उमे पता नहीं चलता कि क्या करने में भुल्ले हम कुफल की प्राप्ति हुई है ?

(१८)

वह वहां से च्युत होकर गूंगे वक्रे की योनि प्राप्त करेगा । तत्पश्चात् नरक-तिर्यच योनि में जन्म लेगा जहां बोधि अत्यन्त दुर्लभ है ।

(१९)

ज्ञातपुत्र भ० महावीर द्वारा कथित इस दोष को जान कर भेदावी पुरुष अणु मात्र भी माया-मृपावाद का परित्याग कर दे ।

(२०)

अपने अन्तरतर के अनुगम को हटा दो । जैसे कमल शारद जल में उत्पन्न होकर भी उसमें लिप्त नहीं होता उसी प्रकार समस्त आसक्ति से रहित होकर, हे गीतम ! क्षण भर के लिए भी प्रमाद

जे कोहणे होइ जगद्वभासी,
विओसियं जे उ उदीरएज्जा ।

अंधेव से दंडपहं गहाय,
अविओसिए धासति पावकम्मी ॥२१॥
—सूय. १-१३-५

जे विग्गहीए अन्नायभासी,
न से समे होइ अभंरूपत्ते ।

उवायकारी य हिरीमणे य,
एगंतदिट्ठी य अमाइरूवे ॥ (२२)

—सूय: १-१३-६

जे यावि पुट्टा पलिउंचयंति,
आयाणमहुं खलु वंचयित्ता ।

असाहुणो ने इह साधुमाणी,
मायएण एसंति अणंतघातं ॥ (२३)

(-१)

जो पुनः सदा प्रोक्त करता रहता है, हमारे कर्मों का कर्मन करता है और दान्त हुए कर्मों, कर्मों प्रोक्त करता है, यह ज्ञानाधारी जगह में पड़ा है । कर्मों में जाने वाले अर्थों को तरह तरह के कर्मों का भाजन बनता है ।

(-२)

जो कर्मन करता है, अन्याय-भाजन करता है । नमता को प्राप्त नहीं होता । अन्याय मातृ का गुरु को भाजा का पालन करे, भाजन में कर्मों विज्ञान हो और नमता के प्रति एकान्त निष्ठा रहे । यही पुनः अनायी है ।

(-३)

जो पृथने पर गुरु का नाम छिपाते हैं, वे मोक्ष में वंचित होते हैं । वे वास्तव में असाधु हैं तथापि अपने को साधु मानते हैं । ऐसे सायावी अनन्त थार संसार में घात को प्राप्त होते हैं ।

कर्म

एगया देवलोण्गु,

नरएगु वि एगया ।

एगया आसुरं कायं,

अहाकम्मेहिं गच्छई ॥ (१)

—उत्त० ३-३

तेणे जहा संधिमुहे गहीए,

सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।

एवं पया पेच्च इहं च लोए,

कडाण कम्माण ए मोक्ख अत्थि ॥ (२)

—उत्त० ७-३

कर्म

(१)

संसारो जीव शुभ कर्म उपार्जन करके देवलोक में जन्म लेता है, अशुभ कर्म उपार्जन करके नरक को व्यथाएँ भोगता है; अज्ञानपूर्वक कायक्लेश आदि सहन करके असुरनिकाय में उत्पन्न होता है। इस प्रकार अपने कर्मों के अनुसार नाना योनियों में भटकता रहता है।

(२)

जैसे पाप करने वाला चोर खात. के मुख पर पकड़ा जा कर अपने किये कर्मों द्वारा ही दुःख उठाता है, उसी प्रकार जीव परलोक और इसलोक में किए दुष्कर्मों द्वारा दुःख उठाते हैं; क्योंकि किये कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

(१६२)

चिन्तन के चित्र

कामेहि संथवेहि य 'गिद्धा,
कम्मसहा कालेण जंतवो ।

ताले जह धंधणच्चुए,
एवं आउकखयंमि तुड्ढति ॥ (७)
—सूय. २-१-

अया सव्वं परिच्चज्ज,
गंतव्वमवरुस ते ।

अणिच्चे जीवलोगम्मि,
किं रज्जम्मि पसज्जसि ? ॥
—उत्त० १२-

जीधियं चैव रूवं च,
विज्जु-संघाय-चंचलं ।

अत्थ सं भुज्झसि रायं,
पेच्चत्थं णावघुज्झसि ॥
—उत्त० १८

(४)

विषयभोगों में और शौर्यशार आदि में अत्यन्त
मनो प्रयत्न करने पर अपने कर्म का फल भोगने
में काम्य भीत होने पर तुम्हें प्रत्यक्ष मृत्यु का भय
होवे, ऐसे प्रयत्न में छूटा मान कम मिल जाता है ।

(५)

इस अनित्य जीवतलोक में जब मर्णा कृत्त ह्यस्य
पर प्रयत्न ही जाना है, तब इस राज्य—वैभव में
क्यों अनुरक्त हो रहा है ?

(६)

राजन ! जिस पर तुम मुग्ध हो रहे हो, वह
जीवन और रूप विजयी की क्षणिक आभा के
समान है । तुम परलौकिक हित को नहीं समझते ।

(१३)

समभाव से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान मुनि और तपस्वियों से तपस्स का पद प्राप्ता जा है ।

(१०)

दृष्ट दिव्य वंश ही होते हैं जैसे गरियाल बेल ।
उन्हें धर्म-शकट में जोता जाय तो अपनी अधीरता
के कारण उसे तहसनहस कर देते हैं ।

मोक्ष

जहा महातलायस्स,
 सण्णरुद्धे जलागमे ।
 उस्सिचणाए तवणाए,
 कमेणं सोसणा भवे ॥ (१)

एवं तु संजयस्सावि,
 पावकम्मणिरासवे ।
 भवकोडिसंचियं कम्मं,
 तवसा णिज्जरिज्जई ॥ (२)

सोच

(१-२)

जैसे किनी विनाश तालाब में सूखे जल का आगमन रुक जाय और पूर्वसंचित जल अरहड़ आदि से सोचा जाय और सूखे की निरर्था द्वारा सोझ लिया जाय तो धीरे-धीरे सम्पूर्ण जल सूख जाता है; इसी प्रकार जब कोई संयमयाम् पुरुष नवीन पाप-कर्मों का निरोध कर देता है और तपश्चरण से पूर्व संचित कर्मों की निजंरा करता है तो कीटि-फोटि श्रवों में संचित समस्त कर्मों का अन्त आ जाता है ।

विरत्यु ते जमोकामी,
जो तं जीवियकारणा ।

वंतं इच्छसि आवेउं,
संयं ते मरणं भवे ॥ (२)

अहं च भोगरापस्म,
तं च सि अंधगवण्हणो ।

मा कुले गंधणा होमो,
संजयं निहुओ चर ॥ (३)

जइ तं काहिसि भावं,
जा जा दिच्छसि नारियां ।

वायाविद्धु व्व हडो,
—निगणा भविस्ससि ॥ (४)

(२५०)

विष्णु के त्रिप

[२]

अरिष्टनेमि का विवाह

कस्तु अट्टा इमे पाणा,
एए सद्ये सुहंसिणो ।

वाडेहिं पंजरं हि च,
सपिणरुद्धा य अञ्छहिं ॥ (१)

अह सारही तओ भणइ,
एए भदा उ पाणिणो ।

तुज्झं विवाहकजम्मि,
भे न्हं जणं ॥

जैसे हो गई । बड़े ठाट के साथ नमस्कार कर अद्वैत
कहा होकर जब द्वारचार के लिए जा रही थी
। अरिष्टनेमि को रास्ते में एक गाढ़े में बंद बहुत-
सूत दियाई दिए । पशुओं को देख कर अरिष्ट-
नेमि ने अपने शारथी ने पूछा—)

(१)

शारथी से अरिष्टनेमि ने कहा—किसके लिए
ये सब सुख के अभिलाषी प्राणी बाढ़ों और पीजियों
बंद किये गये हैं ?

(२)

शारथी ने कहा—यह भद्र प्राणी आपके विवाह
अवसर पर बहुत-से लोगों (बरातियों) को
बलाने के लिए हैं ।

मोडण तस्स वयणं,
 वहुपाणिविणामणं ।

चिंतंइ से महापणं,
 साणुकोसे जिणहि उ ॥ (३)

जइ मज्झ कारणा एए,
 हम्मंति सुवहु जिआ ।

ण मे एयं तु णिस्सेसं,
 परलोगे भविस्सइ ॥ (४)

सो कुंडलाण जुयलं,
 सुत्तगं च महायसो ।

आभरणाणि य सव्वाणि,
 सारहिस्स पणामए ॥

मणा मार्जमयो भीमो,

दृष्ट्वा पश्चिमात् ।

तं मयं तु निमित्तमाभि,

अभिमित्रात् कथमं ॥ (=

कृष्णा वदन्तो लोण,

जहिं मासन्ति जंतुणां ।

अद्वाणे कलं वदन्तां,

तं न मासति गोयमा ! (६)

कृष्णवयणपासंडी,

सर्वे उम्मगपट्टिया ।

सम्मग्गं तु जिणक्खायं,

एस मग्गे हि उत्तरे

(३)

जहाँ हित में प्रवृत्त करने की प्रेरणा नहीं है वहाँ जीभ से चाटना-पुनकारना-भी अच्छा नहीं। इसके विपरीत जहाँ हित में प्रवृत्त करने की प्रेरणा है, वहाँ डंटे से पीटना भी बुरा नहीं है।

(४)

उक्त शिष्य को भी वैरी ही समझना चाहिए जो प्रमाद रूपी मदिरा से उन्मत्त और समाचार (आचार-परम्परा) को विराधना करने वाले अपने गुरु को सावधान नहीं कर देता।

(५)

जो बुद्धिहीन साधु सुखशील-सुकुमार-होने के कारण विहार में आलस्य करता है, अर्थात् आलस्य के कारण श्रमण नहीं करता, वह संयम-योग के

(६)

जो कुल, ग्राम, नगर और राज्य को टुकरा कर साधु बन कर फिर उनमें ममता धारण करता है; वह कोरा बेपधारी है। मयम-योग की दृष्टि से तोखला है।

(७)

जो आचार्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर जिन भगवान् के शासन को प्रकाशित करता है, वह तीर्थंकर के समान है। यदि जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करता है तो वह कापुरुष है, सत्पुरुष नहीं है।

(८)

स्वयं भ्रष्टाचारी आचार्य, भ्रष्टाचारियों की उपेक्षा करने वाला आचार्य और शास्त्र-विरुद्ध प्ररूपणा करने वाला आचार्य, यह तीनों आचार्य मत्तमार्ग का नाश करने वाले हैं।

(६)

आगम के विरुद्ध प्ररूपणा करने वाले और
निर्लेख मार्ग को दूषित करने वाले आचार्यों का
को उपासना करता है, हे गौतम ! यह निश्चय
है अपने आपको जन्म-मरण के चक्र में फँसाता है ।

(१०)

अगर कोई व्यक्ति शुद्ध साधु-मार्ग की प्ररूपणा
करता है, हालांकि स्वयं उसका वह पूरी तरह पालन
हीं कर सकता, तो वह संविग्नपाक्षिक नामक
तीसरी (साधु और गृहस्थ से भिन्न) श्रेणी में
अपने आपको रखता है । उत्सृष्ट प्ररूपणा करने पर
वह गृहस्थधर्म से भी चूकता है ।

इस गाथा में साधु और गृहस्थ से भिन्न तृतीय वर्ग
का उल्लेख किया गया है । यह तीसरा वर्ग संविग्नपाक्षिक
कहलाता है । यह एक मध्यवर्ती वर्ग है । गृहस्थ से ऊँचा
और साधु से नीचा । इस वर्ग के त्यागी जघन्य रास्त्रिक
कहलाते हैं । वे उपदेश देते हैं, मगर अपना शिष्य बना कर
दीक्षा नहीं दे सकते ।

(११)

वीरराग द्वारा इच्छित अनुष्ठान का यदि
फलन न दिना जा सकता हो तो भी वीरराग न
कथनानुसार उभयतः निम्नतः नश्यत् हो फलन
वाहित ।

(१२)

गीतन ! भक्तकाल में कई ऐसे आचार्य ही चुके
हैं, भविष्य में कई ऐसे आचार्य होंगे और वर्तमान
काल में कई ऐसे आचार्य हैं, जिनका नाम लेने से
भी पाप लगता है, प्रायश्चित्त लेना पड़ता है ।

(१३)

जिन नाथुओं ने परमार्थ का अध्ययन नहीं
किया है, अर्थात् आत्मव, संवर, वंश और निजरा
के मर्म को नहीं समझा है, उनमें दूर ही रहना
चाहिए । वे दुर्गति के मार्ग पर न जाने वाले हैं ।

गीयन्थम्म वयणेणं,

विणं हालाहलं पिवे ।

निच्चिकप्पो य भक्खिज्जा,

तक्खणे जं समुद्वे ॥

परमत्थयां विसं नो तं,

अमयरमायणं खु तं ।

निच्चिग्गं जं न तं सारे,

सत्थांऽवि असयस्समो ॥ (१४)

(गच्छा. ४४-४५)

अगीअत्थस्स वयणेणं,

अभियंपि न घुंटे ।

जेण नो तं भवे अमयं,

जं अगीअत्थदेसियं ॥ (१५)

(गच्छा. ४६)

(१४)

गीतार्थ मुनि के कहने में हानाहान विष भी नष्ट होकर पो जाना या ग्या जाना चाहिए, भवे । ऐसा करने में नत्काल शरीर त्याग देना पड़े । स्वयं में वह विष, विष नहीं, अमृत-रसायन है, जसमें मृत्यु नहीं होनी । कदाचित् मृत्यु हो जाय । उनके प्रभाव में अमरत्व की प्राप्ति होती है ।

(१५)

अगीतार्थ के कहने में अमृत भी नष्टकना उचिन ही है । क्योंकि अगीतार्थ में जो कहा है, वह क्षुतः अमृत हो नहीं सकता ।

(१६)

जलती हुई भयानक आग में, निश्शंक प्रवेश करके अपने आपको भस्म कर डालना भला, मगर जाल पुरुष की संगति करना भला नहीं । तात्पर्य जाल की संगति भयानक आग से भी अधिक निकर है ।

(७३) निम्न के निम्न
पञ्चालियं सुमन्तं दृष्टं,

निर्मन्का तत्प पविसिउं ।

प्रताणं निद्रिडिनाहि,
नो कुमीलम् अदिन्नम् ॥ (१६)
(गच्छा ४६)

गुरुणा कज्जमकज्जे,
सुरककमदुडुनिडुरगिराए ।

भगिणं तहत्ति सीसा,
भगन्ति ते गोयसा ! गच्छं ॥ (१७)
(गच्छा. ५६)

तपि न सुव-सत्थं,
न य वणत्थं न चेव दप्पत्थं ।

संजमभरवहणत्थं,
अक्खोवंगं व वहणत्थं ॥ (१८)
(गच्छा. ५८)



